ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. NO.- 516-519
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

वैदिक कालीन लोकतांत्रिक संस्थायें

डॉ0 रमेश प्रताप सिंह
प्राचीन इतिहास विभाग
के0 एस0 साकेत पी0 जी0 कालेज, अयोध्या (उ0प्र0) भारत

Received-11.06.2020, Revised-18.06.2020, Accepted-23.06.2020 E-mail:ramespratap77@gmail.com

सारांशः विश्व की संस्कृतियों में वैदिक सभ्यता या वैदिकयुग का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है, इस संस्कृति का विश्व के विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उपलब्ध साहित्य एवं प्रमाणों से यह प्रमाणित हो चुका है कि विश्व के अन्य राष्ट्र जब अज्ञानान्धकार में डूबे हुये थे, उस समय वैदिक आर्य विविध कला–कौशलों में निष्णात थे, जिस समय यूनान अपनी क्षमता का विकास कर रहा था, और वहाँ राजनैतिक क्षेत्र में नगर राज्यों के रूप में प्रजातन्त्र के प्रारम्भिक परीक्षण चल रहे थे, जब यूनान अपने राज्यों के सभी निवासियों को स्वतन्त्रता एवं समानता के अधिकार प्रदान नही कर सका था और न ही दासों के प्रलोभन से मुक्त हो सका था, उस समय वैदिक कालीन भारत में प्रजातांत्रिक राज्य स्थापित हो चुके थे। एक स्वस्थ्य राजनैतिक चिन्तन फल फूल रहा था और स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्व का भाव राजनीतिक चेतना में व्याप्त था।

कुंजी भूत शब्द – वैदिक सभ्यता, वैदिकयुग, अज्ञानान्धकार, वैदिक आर्य, विविध कला, कौशल, क्षमता का विकास।

ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक काल को हम दो भागों में विभाजित करते हैं। प्रथम ऋग्वैदिक काल (1500–1000 ई.पू.) तथा द्वितीय उत्तरवैदिक काल (1000–600 ई.पू.) दोनों को संयुक्त रूप से वैदिक काल के रूप में जाना जाता है। वैदिक काल में प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास को जानने के क्रम में हम सर्वप्रथम ''विधायिका'' रूपी लोकतंत्रीय संस्था के स्वरूप एवं विकास को जानने का प्रयास करेंगे।

वैदिक काल में विधायिका के रूप में प्रमाणित साहित्य के आधार पर हमें 03 संस्थायें ज्ञात होती हैं, जिन्हें विद्थ, सभा और समिति के नाम से जाना जाता है। विभिन्न विद्वानों के आलेखों में इनकी प्राचीनता के विषय में मत भिन्नता पाई जाती है। तथापि विभिन्न पाठ्य पुस्तकों में प्राचीनतम भारतीय विधायिका के रूप में विदथ को स्वीकार किया जाता है। विद्थ के महत्व को स्वीकार करते हुये, डॉ. रामशरण शर्मा लिखते हैं : ''विद्थ का महत्व इसी से आंका जा सकता है कि जहाँ ऋग्वेद में सभा शब्द का उल्लेख आठ बार और समिति का नौ बार हुआ वही विद्थ का एक सौ बाईस बार हुआ है। इसी प्रकार अथर्ववेद में सभा शब्द सत्रह बार और समिति शब्द तेरह बार आया है, जबकि विदथ बाईस बार।''[1]

विद्थ के विषय में यह स्वीकार किया जाता है कि यह धर्मेत्तर, धार्मिक तथा सैनिक यह तीनों तरह के प्रयोजन करने वाली सभा थी। अर्थात् यह स्वीकार किया जा सकता है, कि प्राचीनतम आर्यों की सभा विद्थ राज्य मे धर्मेत्तर, धार्मिक तथा सैनिक तीनों तरह के कार्यों का निष्पादन करती थी, यहॉ धर्मेत्तर कार्यों में विधायी कार्यो को स्वीकार किया जाना प्रासांगिक माना जा सकता है। विद्थ की प्राचीनता के विषय में डॉ. के. पी. जायसवाल लिखते हैं : ''केवल समिति और सभा ही वैदिक युग की सार्वजनिक संस्थायें नही थी। उन दिनों धार्मिक जीवन की व्यवस्था विद्थ सभा के द्वारा होती थी, जो समिति से पहले से चली आती थी, जान पड़ता है कि सर्वसाधारण की यही सबसे पहली एवं मूल संस्था थी।''[2]

विद्थ के विषय में यह स्वीकार किया जाता है, कि यह प्राचीनतम आर्य सभा थी जहॉ स्त्रियाँ भी सभा मे सहभागी हुआ करती थीं। इस सम्बन्ध में डॉ. रामशरण शर्मा लिखते हैं : ''विद्थ की अपनी अलग विशिष्टता यह है कि इसमें स्त्रियाँ भी बैठती थीं।''[3] विद्थ के विषय में यह निश्चित रूप से स्वीकार किया जाता है, चूंकि यह प्राचीनतम आर्यों की जनजातीय सभा थी, अतः इसमें विद्वत जनों की उपस्थिति रही होगी यह संशयपूर्ण स्थिति कही जा सकती है। उपरोक्त सन्दर्भ में डॉ. रामशरण शर्मा लिखते हैं– ''इस तथ्य पर जोर देना–शायद ठीक नही होगा कि विद्थ बुद्धिमान या आध्यात्मिक प्राधिकारियों की सभा थी।''[4] विद्थ की प्राचीनता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि विद्थ का आदिम स्वरूप इसके कार्यो के अपृथक्कृत रूप से जाहिर होता है। जिस तथ्य के कारण विद्थ अधिक पुरातन प्रतीत होता है, वह है, इसका वितरणात्मक कार्य या उपज का सामूहिक उपभोग। जब उपभोग सामूहिक रूप से होता था तो उत्पादन भी सामूहिक तौर पर ही किया जाता होगा। मानव वैज्ञानिक साक्ष्यों के अनुसार यह स्थिति केवल अत्यंत पुरातन जनजातीय संगठनों जैसे कि विद्थ में पाई जा सकती है। सम्भवतः विद्थ का प्रचलन तब था जब आर्यों द्वारा अपने आदिम स्वरूप में अपना जीवन–यापन किया जाता था। दूसरा विद्थ के विचार विमर्श में स्त्रियों का सम्मिलित होना भी इसे अधिक प्राचीन सिद्ध करता है। उपरोक्त के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विद्थ भारतीय आर्यों की प्राचीनतम जनसभा थी। वैदिक कालीन विधायिका के विकास के क्रम में प्राप्त साहित्य के आधार पर सभा नामक सार्वजनिक संस्था का विकासीय वर्णन शोध की उपादेयता की दृष्टि से अधिक समीचीन प्रतीत होगा। जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि विद्थ नाम सार्वजनिक संस्था वैदिककाल के आरम्भिक चरण में अस्तित्व में प्रतीत होती है, तदक्रम में सभा नामक सार्वजनिक संस्था को प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया। सभा नामक प्राचीन

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

संस्था की प्राचीनता के विषय में प्रसिद्ध लेखक डॉ. रामशरण शर्मा ने अपनी पुस्तक प्राचीन ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें में लिखा हैः ''चूंकि अत्यन्त आदिम सभाओं में ही स्त्रियों के सभागमन की प्रथा थी, इसलिये समिति की तुलना में सभा की पुरातनता सिद्ध होती है।''[5] सभा नामक लोकतंत्रीय विधायी संस्था की प्राचीनता का संकेत इस तथ्य से भी प्राप्त होता है कि समिति शब्द के विपरीत सभा शब्द के अनेक समरूप आरोपीय भाषाओं में उपलब्ध है।''[6]

सभा के विषय में कहा जाता हैः ''सह धर्मेण सभिद्र्वा भातीति सभा'' अर्थात् वह समूह जिसमें सब लोग एक साथ मिलकर प्रकाशमान हो। सभा में जो लोग बैठने के अधिकारी होते थे वे मानो प्रकाश या शोभा से समन्वित होते थे। वे विशेंष आदर या सम्मान के पात्र होते थे। सभा अपने विधायी स्वरूप के अन्तर्गत राष्ट्रीय न्यायालय का भी कार्य सम्पादित करती थी और सभा में विभिन्न सामरिक मुद्दों पर गहन चर्चा या मंत्रणा के भी प्रमाण प्राचीन भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में दिखाई पड़ते है।

वैदिक साहित्य में सभा नामक सार्वजनिक विधायी संस्था को कई रूपों में देखा गया है, कही इसे सभामण्डप के रूप में स्वीकार किया गया है, तो कहीं द्यूतगृह तो कही राजकीय न्यायालय। डॉ. राम शरण शर्मा अपने आलेख में सभा को परामर्श का एक महत्वपूर्ण निकाय स्वीकार करते हैं, साथ ही इसे सामूहिक नृत्य संगीत स्थल, चारागाहों से सम्बन्धित विमर्श स्थल, धर्म सम्बन्धी कार्यकलाप स्थल, तथा राजनीतिक एवं प्रशासनिक कार्य के संपादन स्थल के रूप में भी स्वीकार करते है। सभा के विषय एक तथ्य यह भी बहुत महत्वपूर्ण है कि सभा का परामर्श सभी के लिये महत्वपूर्ण व अनुउल्लंघनीय होता था।

इस सन्दर्भ में डॉ. के.पी. जायसवाल लिखते हैंः ''सभा में सब लोग स्वतन्त्रता पूर्वक बाद विवाद करते थे, सभा का विनिश्चय सब लोगों के लिये बंधन–रूप होता था और कोई उसका उल्लंघन नही कर सकता था।''[7]

सभा नामक सार्वजनिक संस्था के विकास एवं स्वरूप से परिचित होनें के उपरान्त अब वैदिकालीन जिस सार्वजनिक संस्था का विकास एवं स्वरूप अब यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, वह हमारे पूर्वजों की वैदिक कालीन सार्वजनिक विधायी संस्था समिति कहलाती थी। हमें वेदों से ज्ञात होता है कि हम अपने प्राचीन साहित्य पर दृष्टिपात करते हैं, तब हम जानते हैं कि राष्ट्रीय जीवन के सभी प्रशासकीय कार्य सार्वजनिक समूहों एवं संस्थाओं के द्वारा हुआ करते थे। इस प्रकार की संस्था हमारे वैदिक काल के पूर्वजों की समिति थी। समिति का अर्थ है– सबका एक जगह मिलना या एकत्र होना।

प्राचीन भारतीय वैदिक कालीन संस्था का सबसे महत्वपूर्ण कार्य राजा को चुनना था। यदि किसी कारणवश कोई राजा निर्वासित कर दिया जाता था, तो समिति नामक सार्वजनिक और विधायी संस्था द्वारा वह पुर्ननिर्वाचित किया जा सकता था। समिति के शासकीय महत्व के विषय में डॉ. के. पी. जायसवाल लिखते हैः

''सब लोग एकचित्त होकर एक ही व्रत तथा उद्देश्य (समानं व्रत सह चित्तमेषाम्) रखे।''[8]

उपरोक्त वाक्यांश निश्चित रूप से इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि समिति में सामूहिकता के आधार पर कोई निर्णय लिया जाता था तथा समिति राज्य सम्बन्धी विषयों पर विचार करती थी। प्राचीन भारतीय विधायी संस्था समिति के महत्व को इस अर्थ में भी दृष्टव्य किया जा सकता है कि समिति में आवश्यक चर्चा या मंत्रणा या विचार विमर्श के समय राजा भी उपस्थित हुआ करता था। समिति में उपस्थित होना राजा का कर्तव्य होता था, यदि राजा समिति में उपस्थिति नहीं होता था, तो उसे कर्तव्य विमुख स्वीकार किया जाता था।

समिति का जीवन काल बहुत दीर्घ हुआ करता था। स्वयं वैदिक काल में यह अनादि समझी जाती थी। अर्थात यह प्राचीन संस्था रही होगी। इनके निरन्तर अस्तित्व का प्रमाण पहले तो ऋग्वेद और अथर्ववेद तदन्तर छान्दोग्य उपनिषद (ई.पू. 800–700) से मिलता है। इसका समय वैदिक काल का अंतिम अंश प्रतीत होता है यह संस्था वैदिक काल के अंतिम समय के पूर्व ही विघटित हुई प्रतीत जान पड़ती है।

प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास के अध्ययन क्रम में विधायिका के उपरान्त हम वैदिक कालीन कार्यपालिका के विकास एवं स्वरूप से परिचित होंगे।

वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में कार्यपालिका रूपी संस्था का सम्पूर्ण उत्तर दायित्व राजा एवं उसकी सहयोगी टोली द्वारा निभाया जाता था। प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध पृष्ठों को पलटने पर यह ज्ञात होता है कि शासन सम्बन्धी समस्त प्रशासकीय कार्य राजा अपने राजकर्ता समूह के लोगों से विचार विमर्श करके ही सम्पादित किया करता था। कार्यपालिका रूपी संस्था मंत्रीपरिषद के विषय में डॉ. के. पी. जायसवाल का मानना है कि यह प्राचीन वैदिक संस्था सभा से उद्घत होकर विकास को प्राप्त हुयी है। इस सम्बन्ध में वह लिखते हैं : ''हिन्दू मंत्रिपरिषद वास्तव में एक ऐसी संस्था थी जो प्राचीन वैदिक काल की राष्ट्रीय सभा से, उसकी शाखा के रूप में निकली थी।''[9]

प्राचीन भारत के वैदिक युग में ऐसा उल्लेख मिलता है कि यर्जुवेद की संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में राज्य के कुछ उच्चाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। अर्थात् प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था के वैदिक युग में एक ऐसा समूह पाया जाता था, जो राजा को उचित विचार विमर्श प्रदान कर राज्य कार्य में सहायता प्रदान करता था। बहुधा यह समूह प्रमुख लोगों का था इसमें राजा के परिजन भी शामिल रहा करते थे।

वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में कार्यपालिका रूपी विधायी संस्था मंत्रीपरिषद को तत्समय ''रत्नी'' कहा था और इनकी संस्था ''राजपरिषद'' कहलाती थी इस सम्बन्ध में डॉ. ए.एस. अल्टेकर भी अपना अभिमत इस प्रकार का ही प्रस्तुत करते हैं। डॉ. ए.एस. अल्टेकर का मानना है कि ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में राजा के मंत्रियों का उल्लेख नहीं है, परन्तु यजुर्वेद की संहितायें एवं अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ राजा के सहयोगी उच्चाधिकारियों का उल्लेख अवश्य प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. ए. एस. अल्टेकर लिखते हैं– ''यजुर्वेद की संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में राज्य के कुछ उच्चाधिकारियों का

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

उल्लेख है, ये ''रत्नी'' कहे जाते थे और सम्भवतः राजपरिषद के सदस्य थे।''[10]

वैदिक कालीन लोकतंत्रीय संस्था कार्यपालिका अर्थात् रत्नी परिषद में पट्टरानी, युवराज राजन्य आदि राजा के सम्बन्धी, क्षत्ता आदि दरवारी और सेनानी, सूत, संग्रहीता तथा रथकार जैसे प्रमुख पदाधिकारी शामिल रहते थे, जो राजकीय कार्यों में राजा को अर्हनिश सहायता प्रदान करते थे।

एक निश्चित समयान्तराल के उपरान्त वैदिक युगीन शासन व्यवस्था का पतन आरम्भ हो गया और नये राजवंशों के हाथों में शासन सत्ता की बागडोर जाती रही तो रत्नीपरिषद का महत्व भी धूमिल होता चला गया एवं बाद के शासकों के काल मे इस लोकतंत्रीय संस्था कार्यपालिका को कई अन्य विविध नामों से सम्बोधित करने के प्रमाण अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे उपलब्ध होते हैं।

प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास क्रम मे कार्यपालिका के उपरान्त अब हम ''न्यायपालिका'' के विकास एवं स्वरूप को देखने का प्रयास वैदिक युग में करेंगे।

प्राचीन भारतीय वैदिक कालीन शासन व्यवस्था धर्म एवं कर्तव्यों पर आधारित थी, यहाँ न्याय राज्य की प्रथम प्राथमिकता होती थी। राजा का यह प्रथम कर्तव्य होता था कि वह राज्य में न्याय को समन्वित रूप से लागू कर ईश्वर की दया दृष्टि प्राप्त करें। जहाँ तक वैदिक कालीन शासन व्यवस्था के अन्तर्गत पल्लवित एवं पोषित लोकतंत्रीय संस्थाओं में न्यायपालिका के विकास का प्रश्न है, तो तत्समयी विविध प्राचीन ग्रन्थों, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पर लिखित विविध पुस्तकों में यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है कि वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में न्यायपालिका रूपी लोकतंत्रीय संस्था को हम प्राचीन सार्वजनिक संस्था सभा के रूप में ग्राह्य कर सकते है। विद्वान विचारक डॉ. के. पी. जायसवाल का इस सम्बन्ध में मत है : ''सभा का कार्य तो बिल्कुल की स्पष्ट है। वह सभा राष्ट्रीय न्यायालय का कार्य करती थी। पारष्कर गृहसूत्र में सभ को 'आपत्ति' और 'घोरता' कहा है। यह अपराधियों के लिये ही होती थी।''

अतः यह स्पष्ट है कि डॉ. के.पी. जायसवाल का उपरोक्त मत निश्चित रूप से इस तथ्य की ओर इंगित करता है, कि प्राचीन भारतीय वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में न्यायापालिका रूपी लोकतंत्रीय संस्था सभा रूपी संस्था में समाहित थी। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की एक ऋचा मे वर्णन आया है :

''सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः। किल्लिवष स्पृत्पितुषणिह्र्योषामरं हितो भवति वा जिनाय।।''

प्राचीन जातक ग्रन्थ में भी सभा के न्यायपालिका रूपी कार्यो के वर्णन क्रम में प्रसंग आता हैः

''न सा सभा यत्थ न संति संतो न ते संतो ये न भवंति धंमं। रागं च दोषं च पहाय मोहं धंमं भणंता च भवन्ति संतो।।''

प्राचीन भारतीय ग्रन्थ शुक्ल यजुर्वेद में इस बात का उल्लेख आता है कि सभा में लोग अपने किये हुये अपराधों का पश्चाताप करते थे, इस क्रम में शुक्ल यजुर्वेद के एक श्लोक के अनुसार :

''यद ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये, यचछूद्रे यदर्ये यदेनश्चक्रमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमति।''

सभा द्वारा प्राचीन भारतीय वैदिक वाङ्गमय में लोकतंत्रीय संस्था न्यायपालिका का भी कार्य किये जाने के विषय में प्राचीन भारतीय शासन पद्धति के प्रसिद्ध विश्लेषक एवं विचारक डॉ. राम शरण शर्मा का भी यही अभिमत है, वह भी मानते हैं कि प्राचीन भारत में वैदिक काल में न्याय प्रदान करने वाली संस्था को सभा में समाहित माना जाता था। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें में लिखा है :

''सभा न्याय कार्य भी करती थी इस तथ्य पर अनेक लेखकों ने जोर दिया है, ऋग्वेद के आधार पर सभा को एक ऐसी संस्था के रूप में दिखलाने की कोशिश की गई है, जो अभियोग लगाकर लोगों के कलंक मिटाती थी।''

प्राचीन भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास क्रम में वैदिक काल में प्रचलित कुछ लोकतंत्रीय पद्धतियों के विकास एवं स्वरूप से अवगत होना शोध की आवश्यकताओं के अनुरूप होगा। तदक्रम में वैदिकालीन बहुमत आधारित शासन पद्धति के विकास एवं शोध का अध्ययन करेंगे।

वैदिक कालीन भारतीय शासन पद्धति में विधायी, राजकीय, नीतिगत एवं प्रशासकीय नीति निर्माण की प्रक्रिया में बहुमत को प्रश्रय दिया जाता था। प्रायः निर्णय निर्माण की प्रक्रिया विधायिका में ही सम्पन्न होती थी। विधायिका रूपी प्राचीन भारतीय संस्थायें विद्थ सभा और समिति में उल्लेख आया है कि ये संस्थायें किसी विनिश्चय पर पहुँचने के लिये मतैक्य के पक्ष में रहती थी, मतैक्य के अभाव में बहुमत आधारित निर्णय निर्माण प्राचीन भारतीय वैदिक कालीन शासन व्यवस्था का अभिन्न भाग कहा जा सकता है।

इसके उपरान्त वैदिक कालीन प्राचीन भारतीय शासन पद्धति में उत्तरदायी शासन पद्धति के विकास एवं स्वरूप को देखने का प्रयास भी शोध की पूर्णता के लिये बहुत ही आवश्यक माना जायेगा।

वैदिक कालीन राजा के विषय में वर्णन आता है कि राजा का वरण/निर्वाचन तत्समयी प्रचलित लोकतंत्रीय संस्था के माध्यम से होता था, तथा राजा उस लोकतंत्रीय संस्था के सभी विनिश्चयों को सहर्ष आत्मसात करता था वस्तुतः राजा द्वारा इन लोकतंत्रीय संस्थाओं के विनिश्चय को स्वीकार करना अप्रत्यक्ष आम जन के विनिश्चय को स्वीकार करना माना जायेगा और यह उत्तरदायी शासन पद्धति को जन्म देकर उसे विकसित करने का भी प्रयास स्वीकार किया जायेगा। वैदिक कालीन शासन व्यवस्था में राजा द्वारा उत्तरदायी शासन का भाव उसके जनकल्याणकारी कार्यों के अर्थ में भी स्वीकार किया जा सकता है।

प्राचीन भारतीय वैदिक कालीन शासन पद्धति में ग्राम शासन पद्धति के विकास एवं स्वरूप का अध्ययन भी शोध की उपादेयता की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जायेगा।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

अति प्राचीन काल से ही भारत के ग्राम शासन व्यवस्था के मुख्य केन्द्र बिन्दु रहे हैं। ग्राम का शासन गाँव के मुखिया के निर्देशन एवं निरीक्षण में संचालित होता था। प्राचीन वैदिक कालीन शासन पद्धति में गाँव के मुखिया को ग्रामणी का नाम प्रदान किया गया है। ग्रामणी के महत्व को इस अर्थ में भी स्वीकार किया जा सकता है कि वह राजा के निर्वाचन/वरण के समय समिति नामक लोकतंत्रीय संस्था में ग्राम का प्रतिनिधित्व करते हुये उपस्थिति होता था। इस सम्बन्ध में डॉ. के.पी. जायसवाल लिखते है :

''वहाँ राज्याभिषेक के अवसर पर ग्रामणी अथवा गॉव का मुखिया प्रतिनिधि रूप में उपस्थित होता था।'' निश्चित रूप से इस तथ्य को स्वीकार किया जा सकता है, कि वैदिककालीन शासन व्यवस्था में ग्राम शासन पद्धति अस्तित्व में थी तथा गाँव के मुखिया को तत्समय ग्रामणी नाम दिया गया। बाद के समय में इस पद्धति का और अधिक विकास हुआ तथा ग्रामणी को कई अन्य नामों सेभी जाना गया। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय शासन पद्धति में राजनैतिक दलीय व्यवस्था, अर्न्तराज्यीय सम्बन्ध, नागरिक अधिकार एवं कर्तव्य, निर्वाचन पद्धति के विकास एवं स्परूप को भी वैदिक काल ने प्रदान करने का कार्य किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्टेकर डॉ. ए.एस. ''प्राचीन भारतीय शासन पद्धति'' विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2013
2 लक्ष्मीकान्त एम. ''भारत की राज्य व्यवस्था'' एम.सी.ग्रा हिलएज. प्राई. लि. चेन्नई, 2018
3. पाण्डेय डॉ. जय नारायण ''भारत का संविधान'' सेन्ट्रल लॉ ऐजेन्सी इलाहाबाद, 1971
4. श्रीवास्तव के.सी. ''प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति'' यूनाईटेड बुक डिपो इलाहाबाद, 2007
5. शर्मा हरिश्चन्द्र ''प्राचीन भारतीय राजनैतिक संस्थायें'' कॉलेज बुक डिपो जयपुर, 1996
6. शर्मा हरिश्चन्द्र ''प्राचीन भारतीय राजनैतिक संस्थायें'' कॉलेज बुक डिपो जयपुर, 1996. अल्टेकर डॉ. ए.एस. ''प्राचीन भारत में राज्य और सरकार'' मोतीलाल बनारसीदास पटना, 1935
7. शर्मा जे.पी. ''प्राचीन भारत में गणतन्त्र'' ग्रन्थ विकास जयपुर, 1996 प्रसाद मणिशंकर ''कॉटिल्य के राजनैतिक एवं सामाजिक विचार'' भारतीय साहित्य संग्रह, 1998
9. चौधरी रामकृष्ण ''प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'' भारती भवन पटना, 1970
10. टण्डन किरण ''प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारक'' ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली, 1988

*****